IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

डूंगरपुर –मराठा सम्बन्ध : एक अध्ययन

(1728–1818 ई.)

डॉ. निमेष कुमार चौबीसा
सहा. आचार्य, इतिहास
एस. बी. पी. राजकीय महाविद्यालय डूंगरपुर

सारांश

राजस्थान के सुप्रसिद्ध 22 रजवाड़ों में से डूंगरपुर राज्य का अपना विशेष महत्व रहा है। गुजरात एवं मालवा के साथ राजपूताने को मिलाने वाला, यह राज्य एक मिश्रित संस्कृति एवं राजनीति का केन्द्र बना रहा। गुजरात, मालवा एवं राजपूताने के मध्य होने के कारण इस राज्य का सामरिक महत्व अत्यधिक रहा है, जिस कारण इस राज्य पर अनेक आक्रमण हुए। मुगल काल में मुगलों का ध्यान भी इस राज्य पर सदैव रहता आया था। औरंगजेब की मृत्यु के साथ ही मुगल साम्राज्य का पतन और भारत की राजनीति में मराठा शक्ति का उदय होने लगा। मराठों ने मुगल साम्राज्य के पतन का लाभ उठाने हेतु अपना प्रभाव क्षेत्र मालवा एवं गुजरात की ओर बढ़ाना प्रारम्भ कर दिया। इसी क्रम में पेशवा द्वारा मराठा साम्राज्य का प्रभाव डूंगरपुर रियासत पर भी स्थापित किया गया।

कुंजी शब्द :–मुगल, मराठा, खंडणी, महारावल, पेशवा, हुरडा, चौथ, संधि ।

उत्तरी भारत पर मराठों के आक्रमणों का आरम्भ सन् 1699 ई. से ही हो जाता है। आरम्भ में मराठों के आक्रमण उत्तरी भारत पर आधिपत्य स्थापित करने के उद्देश्य से नहीं होते थे। उनका उद्देश्य मुगलों का ध्यान दक्षिण भारत से हटाना मात्र था। बाजीराव के पेशवा पद पर आसीन होने (1720ई.) तक इस नीति का निर्वाह हुआ, लेकिन बाजीराव के पेशवाकाल में इस नीति में परिवर्तन प्रारम्भ हुआ। बाजीराव के समय जो आक्रमण हुए उनका उद्देश्य उत्तरी भारत में मराठा सत्ता स्थापित कर अपनी शक्ति एवं साम्राज्य का विस्तार करना था। सन् 1723 ई. में बाजीराव ने इसी उद्देश्य से मालवा पर आक्रमण किया तथा उस पर अपना स्थाई अधिकार स्थापित कर लिया। मराठों की मालवा में प्रभुता स्थापित हो जाने पर डूंगरपुर का भयाक्रांत होना स्वाभाविक था। मालवा के निकट होने के कारण मराठों का कभी भी डूंगरपुर पर आक्रमण हो सकता है इसकी सम्भावना बन गयी थी। उस समय डूंगरपुर की शक्ति मराठों से युद्ध करने की नहीं थी। मराठों से युद्ध का मतलब था राज्य का विनाश। उस समय डूंगरपुर के राजसिंहासन पर महारावल रामसिंह विध्यमान थे। उन्होंने राज्य को युद्ध एवं लूटमार से बचाने के लिए मराठों से संधि कर लेना ही उचित समझा और उसने पेशवा बाजीराव से सन् 1728 ई. में संधि कर 35000 रु वार्षिक खंडणी (कर) देना स्वीकार कर लिया।[1] पेशवा ने डूंगरपुर से कर एकत्रित करने का अधिकार धार राज्य के संस्थापक उदाजी पंवार व आनन्दराव पंवार को एक वर्ष के लिए दे दिया लेकिन अवधि के समाप्त होने पर भी यह कर संग्रह का अधिकार उन्हीं के पास रखा। [2]

स्पष्ट है कि महारावल रामसिंह ने खंडणी देने की स्वीकृति यह सोच कर दी थी कि राज्य में शांति बनी रहेगी। इस समय तक मराठों का नैतिक पतन हो चूका था। शिवाजी ने जिस आदर्शो पर मराठा राज्य की स्थापना की थी वे अब लुप्त हो चुके थे। सन्धि के उपरान्त भी सन 1729 ई. में दो मराठा अधिकारी राचोजी कदमराव व सवाई काटसिंह कदमराव सेना सहित डूंगरपुर की सीमा में आ घुसे। राज्य में उन्होंने अत्यन्त अमानुषिक अत्याचार किये व लुटपाट से काफी धन एकत्रित कर भाग गये। जब डूंगरपुर द्वारा पेशवा के पास संधि का उल्लंघन होने की शिकायत की गयी तो

पेशवा ने दोनों अधिकारियों के कार्यो की निन्दा कर लूट का सारा धन डूंगरपुर को पुनः लौटाने के स्थान पर अपने पास रख कर धूर्तता को स्पष्ट रूप से प्रकट कर दिया।[3] मराठा उपद्रवों का इस प्रकार अन्त होने वाला नहीं था। महारावल रामसिंह के उत्तराधिकारी महारावल शिवसिंह के गद्दी पर बैठने (1730ई.) के साथ ही डूंगरपुर में गद्दी के लिए गृहयुद्ध प्रारम्भ हो गया। इस गृह युद्ध में मराठें भी भाग लेने लगे। महारावल शिवसिंह मराठों को गृहयुद्ध से दूर ही रखना चाहते थे। इस उद्देश्य को पूर्ण करने के लिए उन्होंने दयाराम खवास को सतारा दरबार में फिर सन्धि करने के लिए भेजा। इस बार मराठों की मांग अत्यधिक कठोर थी, लेकिन दयाराम खवास संधि की शर्तो को उचित स्तर पर लाने में सफल हुए। इस बार भी कर की राशि पहले के अनुसार ही 35000रू तय की गई। डूंगरपुर को यह राशि धार के पंवारों के माध्यम से पूना राज्य को देनी थी।[4] इस संधि के कुछ समय पश्चात ही अक्टुबर 1731 ई. में बापूजी मल्हारजी चौथ वसूल करने डूंगरपुर आया तथा एक बड़ी राशि लेकर ही उसने डूंगरपुर छोड़ा।[5] डूंगरपुर के शासकों ने खंडणी देना स्वीकार तो कर लिया था, परन्तु अनेक कारणों से राशि का प्रतिवर्ष समय पर दिया जाना सम्भव नहीं हो पा रहा था। वास्तव में जब तक या तो मराठा सरदार स्वयं नहीं आते या सैनिक शक्ति का प्रयोग नहीं किया जाता तब तक डूंगरपुर से कर वसूल नहीं किया जा सकता था। गत दो तीन वर्षो से एक भी मराठा सरदार डूंगरपुर नहीं जा पाया जिसका लाभ उठाते हुए महारावल ने मराठों को कर की राशि नहीं भेजी, डूंगरपुर द्वारा कर न मिलने के कारण जनवरी 1733 ई. में मल्हारराव होल्कर व राणोजी सिन्धिया कर वसूल करने के लिए डूंगरपुर आये।[6] शिवाजी शंकर के पत्र से जो उसने पेशवा बाजीराव को लिखा था, ऐसा लगता हैं कि होल्कर व सिन्धियां को बकाया रकम वसूल करने में कोई भी सफलता प्राप्त नहीं हो सकी। इस असफलता का प्रमुख कारण यह था कि दोनों सरदार डूंगरपुर में अधिक समय तक नहीं रुक पाये। उनके लिए सवाई जयसिंह के मालवा में बढ़ते हुए प्रभाव को रोकना अधिक आवश्यक था, जबकि डूंगरपुर से तो वह कभी भी आकर बकाया रकम वसूल कर सकते थे। अतः होल्कर व सिन्धिया अधिक दिन डूंगरपुर में न रुक कर सवाई जयसिंह को रोकने के लिए मंदसोर की ओर रवाना हो गये। डूंगरपुर द्वारा कर न देने पर मराठे काफी रुष्ट हुए और 5–7 हजार की सेना पूरी तैयारी के साथ डूंगरपुर से कर वसूल करने के लिए भेजी गई। उस सेना ने डूंगरपुर आकर बलपूर्वक बकाया रकम वसूल की।

डूंगरपुर के समान ही राजस्थान के अन्य राज्यों में भी मराठों का हस्तक्षेप बढ़ता जा रहा था। मराठों के बढ़ते हुए प्रभाव से आतंकित होने के साथ ही राजस्थान के शासक मराठों के मालवा व राजस्थान में फैलते हुए प्रभाव को रोकने के लिए विचार विमर्श करने लगे। आंबेर के सवाई जयसिंह के प्रयत्नों से मेवाड़ के हुरडा नामक ग्राम में राजस्थान के शासकों ने सम्मिलित रूप से मराठों के बढ़ते हुए प्रभाव को रोकने का निश्चय किया।[7] इस संधि का जो परिणाम होना चाहिए था, वह नहीं हुआ। सवाई जयसिंह की उदासीनता, महाराणा की अनुभव हीनता तथा राजपूत राज्यों की एकता के अभाव में सम्मेलन के निर्णय कार्यान्वित न हो सके। इसी प्रकार मुगल शक्ति द्वारा मराठों को राजस्थान व मालवा से निष्कासित करने की सैनिक कार्यवाही भी असफल हुई। इन सबको देख सवाई जयसिंह ने पेशवा बाजीराव को उत्तरी भारत में आने का निमन्त्रण दिया। पेशवा को उत्तरी भारत की स्थिति जानने का यह उपयुक्त अवसर मिला। जयसिंह की सहायता का आश्वासन पाते ही राजस्थान के प्रत्येक राजपूत राजा की राजधानी में स्वयं जाने तथा उन्हें समझा बुझाकर उनसे शान्तिपूर्वक चौथ वसूल करने का निश्चय कर पेशवा ससैन्य पूना से अक्टूबर 1735 ई. में राजस्थान की यात्रा के लिए चल पड़ा। उदयपुर के महाराणा जगतसिंह द्वितीय के बुलावे पर पेशवा बाजीराव कुकसी लुणावाड़ा होता हुआ जनवरी 1736 ई. के प्रथम सप्ताह में डूंगरपुर पहुंचा। महारावल शिवसिंह ने पेशवा का अच्छा स्वागत किया। डूंगरपुर में ही महारावल तथा पेशवा के मध्य खंडणी सम्बधित वार्तालाप हुआ। महारावल ने पेशवा को तीन लाख रुपये देकर उदयपुर के लिए विदा किया।[8] पेशवा डूंगरपुर से रवाना होकर 15 जनवरी 1736 ई. को मेवाड़ की दक्षिणी सीमा पर पहुंच गया। इस प्रकार डूंगरपुर ने एक बार फिर बडी धन राशि देकर स्वयं को मराठों के रोष से बचाया।

मुगल साम्राज्य की परिस्थिती उत्तरोत्तर बिगडती जा रही थी। मराठों को रोकने के लिए सारे प्रयत्न विफल रहे। निजाम ने भी भोपाल के युद्ध में मुंह की खाई और विवश होकर उसे दुराहा सराय का समझौता करना पड़ा। मालवा के साथ ही राजस्थान में भी मराठे यत्र–तत्र चौथ वसूल करने लगे। राजस्थान से रुपया वसूल करने और मराठों के दूसरे काम–काज को देखने के लिए राणोजी सिन्धिया ने बालाजी गुलगुले को कोटा में नियुक्त किया। इसी अराजकता की स्थिति में नादिरशाह के आक्रमण के रुप में भारत की उत्तरी–पश्चिमी सीमा पर एक नई और महान आपत्ति के बादल घुमड़ रहे थे। वह विपत्ती किसी भी प्रकार टाले नहीं टली और उत्तरी भारत को उससे भारी हानी उठानी पड़ी।

नादिरशाह के आक्रमण ने डगमगाते हुए जीर्ण–शीर्ण मुगल साम्राज्य के रहे सहे संगठन को भी पूर्णतया छिन्न–भिन्न कर दिया। उस समय राजस्थान में कोई शक्तिशाली मुगल सुबेदार नहीं था, जो यहाँ के विभिन्न नरेशों को दबाकर उन्हें अधीन रख सकता। मुगल साम्राज्य की इस रही सही सर्वोपरी सत्ता के विलीन होते ही अब राजस्थान में सर्वत्र अराजकता तथा अशांति का प्रसारण हो गया। अराजकता पूर्ण स्थिति का मराठों ने पूर्ण लाभ उठाया तथा अपने प्रभाव क्षेत्र को विस्तृत किया। मराठों की बढ़ती हुई शक्ति का सामना करने में जयपुर, जोधपुर, उदयपुर जैसी बड़ी शक्तियां असमर्थ रही तो डूंगरपुर जैसे छोटे राज्य की असमर्थता तो स्वाभाविक ही थी। अपनी शक्तिहीनता का ध्यान रखते हुए ही विवकेशील महारावल शिवसिंह ने मराठों से अच्छे सम्बन्ध बनाए रखे। उसने अपने राज्य को भयंकर विनाश से बचाने के लिए यही उचित समझा कि दिया जाने वाला कर मराठों को प्रतिवर्ष दे दिया जाना चाहिए। जिससे मराठा राज्य में आकर लूटमार न करें। इसके लिए शिवसिंह द्वारा अपने मंत्री दयाराम तम्बोली को संधि करने के लिए सतारा भेजा। बहुत वाद विवाद के बाद वार्षिक कर देना तय हुआ। इसी उद्देश्य के कारण महारावल शिवसिंह मराठों को प्रतिवर्ष कर देते रहे। मराठों ने भी महारावल के मधुर सम्बन्धों का उत्तर उसी रूप में दिया। उन्होंने 1746 ई. तक डूंगरपुर पर न तो कभी आक्रमण किया और न हीं किसी मराठा सरदार ने डूंगरपुर में आकर लूटमार की। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि पेशवा बाजीराव के डूंगरपुर आगमन के बाद (जनवरी 1737 ई.) से दस वर्षो तक एक भी मराठा सेना डूंगरपुर नहीं पहुंची।[9] इतने लम्बे समय तक मराठा सेना डूंगरपुर नहीं आयी। जिसका महारावल शिवसिंह ने गलत अनुमान लगाया कि अब शायद ही कोई मराठा सेना डूंगरपुर में आएगी। अपने इस मिथ्या विश्वास के कारण उसने मराठों को कर देना बन्द कर दिया। धन के पिपासु मराठे यह कभी भी सहन नहीं कर सकते थे कि डूंगरपुर उन्हें कर नहीं दे। अतः फरवरी 1746 ई. में मल्हारराव होल्कर कर वसूल करने के लिए डूंगरपुर आया। डूंगरपुर से वह धनराशि प्राप्त करने में कहाँ तक सफल रहा निश्चित रुप से नहीं कहा जा सकता। सम्भव है कि शान्ति के इच्छुक महारावल शिवसिंह ने हौल्कर को बहुत सा धन देकर विदा किया होगा।[10]

1758 ई. में महारावल शिवसिंह की मृत्यु होने पर महारावल वैरीशाल राजगद्दी पर बैठे। वह केवल पाँच वर्ष ही शासक रहे। उनके शासनकाल में मराठों से सम्बन्ध अच्छे बने रहे। उनकी मृत्यु के पश्चात 1760 ई. में महारावल फतहसिंह राज्यासीन हुआ। महारावल फतहसिंह के काल में डूंगरपुर राज्य का पतन प्रारम्भ हो गया था। महारावल फतहसिंह की अयोग्यता को देखकर राजमाता शुभ कुंवरी ने उसे कैद कर राज्य कार्य अपने हाथों में ले लिया। राजमाता द्वारा शासन प्रबन्ध चलाना सरदारों को अनुचित लगा और इसी कारण राज्य में सर्वत्र अराजकता फैल गई। इस कारण राज्य की आर्थिक दशा को बड़ा धक्का लगा। जनता द्वारा राज्य को दिया जाने वाला कर भी इकत्रित नहीं हो पा रहा था जिस कारण राज्य में आर्थिक संकट उत्पन्न हो गया । आर्थिक संकट के कारण मराठों को कर की अदायगी भी नहीं हो पा रही थी। दोलतराव सिंन्धिया जो इस समय दक्षिण में था, उसे धन की आवश्यकता थी। उसने अपने सरदार जग्गू बापू व लकवादादा को पत्र लिख कर डूंगरपुर से कर सम्बन्धी मामला शीघ्र निपटाने का आदेश दिया।[11] सरदारों को जब इस बात का पता चला कि मराठे भी राज्य के विरुद्ध कार्यवाही करने वाले है तो उन्होंने इसे स्वर्ण अवसर समझ कर अपना एक दूत होल्कर के सेनापति रामदीन के पास भेजा। रामदीन इस समय बाँसवाडा में था। रामदीन ने सरदारों की सहायता के लिए आश्वासन दिया और वह बांसवाडा से प्रस्थान कर सिलोई ग्राम में ठहरा। रामदीन को केवल धन का लोभ था। उसकी रूचि व्यक्ति विशेष के शासक होने में नहीं थी। इस स्थिति का लाभ उठाने की सोच राजमाता ने बहुत सा धन दे अपने एक विश्वसनीय दूत जवाहरचन्द खडायता को रामदीन के पास भेजा। धन के लोभ में रामदीन ने विद्रोही सरदारों का साथ देना अस्वीकार कर दिया और वह डूंगरपुर राज्य को छोडकर चला गया।[12]

सरदारों तथा राजमाता के मध्य चल रहे गृह युद्ध के कारण राज्य की आर्थिक दशा दिन प्रति–दिन खराब होती जा रही थी। मराठों को दिये जाने वाले वार्षिक कर की राशि की पूर्ण अदायगी न होने से कर की राशि प्रतिवर्ष बढ़ती जा रही थी। इसको लेने के बहाने मराठे अब राज्य में बराबर आने लगे थे। धार के पंवारो द्वारा धनराशि पेशवा के पास नहीं पहुंच रही थी। अतः 9 जनवरी 1802 ई. को दौलतराव सिन्धिया धन प्राप्त करने के लिए धार गया। इस समय आनन्दराव पंवार के पास भी देने को कुछ भी नहीं था। दौलतराव सिन्धियां ने यह सुझाव दिया कि आनन्दराव के क्षेत्रों से दोनों साथ जाकर यह रकम प्राप्त करें। ऐसा लगता है कि दौलतराव ने प्रारम्भ में तो स्वयं का साथ जाना निश्चित किया परन्तु कुछ विशेष परिस्थितियों के कारण वह ऐसा न कर सका। उसने अपने वकील नागोराव को आनन्दराव पंवार और

समरु की सेना के साथ जून 1802 ई. को उज्जैन से डूंगरपुर कर वसूल करने के लिए भेजा। इस सेना ने डूंगरपुर आकर अब तक की बकाया राशि कठोरता से वसूल की।[13]

1802 ई. में दौलतराव सिन्धिया मेवाड से कर वसूल करने उदयपुर आया। दौलतराव स्वयं मेवाड से कर वसूल करने में संलग्न था। अतः उसने अपने सेनानायक सदाशिवराव को कर एकत्रित करने के लिए डूंगरपुर भेजा। सदाशिवराव ने डूंगरपुर पर आक्रमण कर लूटमार प्रारम्भ कर दी। महारावल फतहसिंह की शक्ति इतनी नहीं थी कि वह सदाशिवराव का सामना कर सके। महारावल राजधानी को छोडकर पहाडों में चला गया, परन्तु सदाशिवराव वैसे ही डूंगरपुर छोडने वाला नहीं था। विवश होकर महारावल को दो लाख रुपया देने का वायदा करना पड़ा। उस समय राज्य–कोष खाली पड़ा था। कोष में इतना धन नहीं था कि सदाशिवराव को दिया जाये तो मंत्री वर्ग ने यहां के निवासी नागर ब्राह्मणों से, जो सम्पन्न थे, कठोरता–पूर्वक रुपये वसूल कर सदाशिवराय को दिया गया।[14] धन प्राप्त हो जाने पर सदाशिवराव मेवाड़ को वापस चला गया।

डूंगरपुर से कर वसूल करने का अधिकार पेशवा की ओर से धार के पंवारों को मिला हुआ था परन्तु सिन्धिया व उसके सरदार आये दिन आकर यहां लूटमार करने लगे। पंवारो को यह कार्य अनूचित लगा। पंवारों को यह अनुचित लगना स्वाभाविक भी था क्योंकि इसमें उनको हानि होती थी। अतः पंवार व सिन्धिया के मध्य सन् 1807 ई में डूंगरपुर से एकत्रित किये जाने वाले कर के सम्बन्ध में एक समझौता हूआ। इस समझौते के अनुसार वार्षिक कर की निश्चित राशि तो बराबर पंवारों को मिलती रहेगी, परन्तु अगर इससे अधिक धन वसूल करने का अधिकार मिल जाने से डूंगरपुर से निश्चित राशि से भी अधिक धन वसूल किया जाने लगा। फलतः राज्य की आर्थिक दशा अत्यधिक विकृत हो गई।[15]

1808 ई. में महारावल फतहसिंह की मृत्यु हो गई। फतहसिंह ने अपने पुत्र जसवन्तसिंह के लिए कांटों का सिंहासन छोडा था। जसवन्तसिंह को जो सत्ता प्राप्त हुई थी वह पूर्ण रुपेण खोखली थी जिसमें ऐसे कृमि कीट लगे हुए थे जो निरनतर उसे खोखली किये जा रहे थे। राज्य की डावांडोल स्थिति से लाभ उठाते हुए खुदादाद खां नामक एक सिन्धी सेनानायक ने डूंगरपुर पर आक्रमण कर उसे अपने अधिकार में कर लिया। महारावल के हाथ से राज्य के चले जाने पर उसे पुनः प्राप्त करने के लिए उसने अपना एक दूत होल्कर के पास सहायता प्राप्त करने के लिए भेजा।[16] होल्कर ने महारावल की सहायता करना स्वीकार कर अपने सेनापति रामदीन को उसकी सहायतार्थ भेजा। रामदीन के आने का समाचार प्राप्त होते ही महारावल ने भी अपने सरदारों को एकत्रित कर रामदीन से गलियाकोट में जा मिला। सम्मिलित सेना का खुदादाद खां से युद्ध हुआ। युद्ध में खुदादाद खां को काफी क्षति हुई, परन्तु उसने महारावल को पकड लिया। महारावल को साथ लेकर खुदादाद खां सलुम्बर के मार्ग से मेवाड़ की ओर बढ़ा। यह समाचार जब थाणा के रावल को मिला तो उसने अपनी सेना के साथ खुदादाद खां पर आक्रमण कर दिया। खुदादाद खां युद्ध में मारा गया और महारावल सिन्धियों के पंजे से मुक्त हुआ।[17]

सिन्धियों के पंजे से युक्त होने पर 1816 ई. में महारावल जसवन्तसिंह का पुनः डूंगरपुर पर अधिकार हो गया। इस समय राज्य में सरदारों ने महारावल के साथ असहयोग करना आरम्भ कर दिया। परिणामतः राज्य में अशान्ति फैल गयी। इस अशान्ति के कारण राजकीय व्यवस्था पूर्णतः छिन्न–भिन्न हो गयी। दूरवर्ती स्थानों की रक्षा का कोई प्रबन्ध राज्य की ओर से नहीं हो पा रहा था। इसका लाभ उठाने हेतु मराठा सरदार जिनको धन की आवश्यकता थी, आये दिन राज्य में आकर लूटमार करने लगे। सन 1818 ई. के प्रारम्भिक दिनों में बापू रघुनाथ जिसको अपने भरण पोषण के प्रबन्ध तक की चिन्ता थी, लुणावाडा होते हुआ डूंगरपुर राज्य में गलियाकोट नामक नगर में आया और लूटमार कर वापस लौट गया।

डूंगरपुर राज्य मुगल साम्राज्य के पतन के बाद पेशवा को 35 हजार रुपया सालाना खंडणी देता था। पेशवा ने इसकी वसूली का अधिकार धार के पंवारों को दे रखा था। पेशवा के होल्कर, सिन्धिया और गायकवाड़ आदि सेनापति शक्तिशाली बनते जा रहे थे, पेशवा की शक्ति क्षीण होने लगी। मराठों के आक्रमणो के कारण राजस्थान के बड़ी दुर्दशा हुई तथा यहां के नरेश इतने शक्तिहीन हो गये कि बाहरी सहायता के बिना वे अपने घरेलू झगडों का निपटारा भी नहीं कर सकते थे। ऐसे अशान्त वातावारण में अग्रेंजों को अपनी सत्ता दृढ़ करने का अच्छा अवसर मिल गया और क्रमशः आगे बढ़ते हुए उन लोगों को दबाने लगे जो उनकी उन्नति में बाधक थे। 1818 ई. तक अंग्रेजों की शक्ति भारत में दृढ़ हो चुकी थी। राजस्थान में भी राज्य एक एक कर अंग्रेजों के अधीन होते जा रहे थे। ऐसे समय में महारावल जसवन्तसिंह ने अंग्रेजी सरकार के साथ सन्धि कर अपने राज्य की दशा सुधारने का निश्चय किया। इस कार्य के लिए

उसने अपने मंत्री ऋषभदास नागर और कृष्णदास सोलंकी को नियुक्त किया। इन मंत्रियों ने कप्तान जो कालफिल्ड का सागवाडा में स्वागत किया। सेण्ट्रल इण्डिया व मालवा के एजेण्ट गवर्नर जनरल ब्रिगेडियर जनरल सर जॉन माल्कम की आज्ञा से कप्तान जे. कालफिल्ड के द्वारा 11 सितम्बर 1818 ई. को ईस्ट इण्डिया कम्पनी से संधि कर ली गयी। ईस्ट इण्डिया कम्पनी से संधि हो जाने पर डूंगरपुर पूर्णतः ईस्ट इण्डिया कम्पनी के संरक्षण में चला गया। डूंगरपुर को मराठो को दिया जाने वाले कर से ही मुक्ति नहीं प्राप्त हुई, अपितु अब चढ़ी हुई राशि भी देना आवश्यक नहीं रहा। मराठों ने कम्पनी के द्वारा इस राशि को प्राप्त करने का प्रयास किया, परन्तु कम्पनी ने इस आधार पर कि डूंगरपुर पर मराठों का गत दस बीस वर्षो से स्थायी अधिकार नहीं होने से उनकी मांग को अस्वीकार कर दिया।[18] एक अन्य समझौते द्वारा मराठों ने यह राशि कम्पनी को लेने की स्वीकृति दे दी। इस आशय की एक संधि डूंगरपुर व कम्पनी के मध्य फिर हुई और 1820 ई. में इकरारनामा लिखा गया।[19]

ईस्ट इण्डिया कम्पनी से संधि हो जाने पर डूंगरपुर का सम्बन्ध मराठों से सदैव के लिए समाप्त हो गया। मराठों के यह सम्बन्ध डूंगरपुर के लिए पूर्णतः हानिकारक रहे। 1728 ई. में महारावल रामसिंह ने मराठों से इस उद्देश्य से संधि की थी कि जिस प्रकार मुगलकाल में डूंगरपुर द्वारा मुगलों से मधुर संबंध रहे थे। उसी प्रकार मराठों से भी रहेगें। किन्तु डूंगरपुर के लिए मराठा सम्बन्ध उसकी आर्थिक दशा को खराब करने का प्रमुख कारण रहा। इस सम्बन्ध काल में डूंगरपुर को मराठों को कुल लगभग 34 लाख 50 हजार रुपये संधि के आधार पर देने पडे। इसके अतिरिक्त मराठों द्वारा आए दिन लुटमार किये जाने के कारण राज्य तथा जनता दोनों की आर्थिक दशा बिगड गयी तथा सर्वत्र अराजकता फैल गयी। ईस्ट इण्डिया कम्पनी से संधि हो जाने के कारण राज्य में पुनः शान्ति स्थापित होने लगी जिस कारण राज्य की आर्थिक दशा में भी सुधार होने लगा।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. सैयद सफदर हुसैन लिखित डंगरपुर राज्य का गैजेटियर (उर्दू) का हस्तलिखित हिन्दी अनुवाद ।
2. लेले तथा ओक, धाराच्या पवारांचे महत्व व दर्जा, पृ. 34–35
3. गौरीशंकर हीराचन्द औझा, डूंगरपुर राज्य का इतिहास, पृ. 125
4. शोर्ट हिस्ट्री ऑफ डूंगरपुर स्टेट, पृ. 87
5. धाय भाई नगराज का पत्र जोरावर सिंह के नाम, दि. 07 अक्टुबर 1731ई. (सीतामउ कलेक्शन–जयपुर पेपर्स, जि. 5, पृ. 123)
6. डॉ. रघुवीर सिंह, मालवा इन ट्रांजीशन, डी बी तारापोरेवेला, सन्स एण्ड को. ट्रेजर हाउस ऑफ बुक्स, 210, बॉम्बे, 1936, पृ.223
7. (अ)कर्नल टॉड कृत 'राजस्थान का इतिहास', जि. 1 पृ. 482–483 (ब) वीर विनोद, भा.2, पृ.1218–21
8. गौरीशंकर हीराचन्द औझा, डूंगरपुर राज्य का इतिहास, पृ. 128
9. मथुरादास शिवहरे, डूंगरपुर राज्य का इतिहास, वैदिक मंत्रालय ,अजमेर, पृ. 93
10. श्रीराम दीक्षित, प्रेसिडेण्ट म्यूनिसिपल कमेटी डूंगरपुर, 'इतिहास रियासत डूंगरपुर', पृ. 15
11. दौलतराव सिन्धियां द्वारा जग्गु बापू व लकवादादा को दि. 2 सित. 1799ई. को लिखा पत्र (गुलगुले दफ्तर, रीडींग इन हिस्ट्री ऑफ डूंगरपुर, सितामउ लाइब्रेरी म.प्र.,पृ.24)
12. गौरीशंकर हीराचन्द औझा, डूंगरपुर राज्य का इतिहास, पृ. 138
13. सदाशिव जगन्नाथ द्वारा लालजी बल्लाल के नाम दि. 17 जून 1802ई. को लिखा गया पत्र(गुलगुले दफ्तर, रीडींग इन हिस्ट्री ऑफ डूंगरपुर, सितामउ लाइब्रेरी म.प्र.,पृ.26)
14. शोर्ट हिस्ट्री ऑफ डूंगरपुर स्टेट, पृ. 103
15. सैयद सफदर हुसैन लिखित डंगरपुर राज्य का गैजेटियर (उर्दू) का हस्तलिखित हिन्दी अनुवाद, पृ. 19
16. सिंड़ायच कवि किशन कृत 'उदय प्रकाश' काव्य, स्टैण्डर्ड प्रेस, इलाहाबाद,1910, पृ. 28
17. गौरीशंकर हीराचन्द औझा, डूंगरपुर राज्य का इतिहास, पृ. 142
18. ट्रीटीज एंगेज़मेंट्स ऐण्ड सनदज़, जि. 3, पृ.55–57
19. गौरीशंकर हीराचन्द औझा, डूंगरपुर राज्य का इतिहास, पृ. 146